हिंदी उपन्यास में लोक-संस्कृति

संपादक

पूनम सिन्हा

त्रिविक्रम नारायण सिंह

हिन्दी उपन्यास में लोक संस्कृति

सम्पादक

पूनम सिन्हा

त्रिविक्रम नारायण सिंह

समीक्षा प्रकाशन

दिल्ली/मुजफ्फरपुर

ISBN : 978-93-87638-85-3

प्रथम संस्करण
2020

सर्वाधिकार ©
सम्पादक

प्रकाशक
समीक्षा प्रकाशन
जे.के.मार्केट, छोटी कल्याणी
मुजफ्फरपुर (बिहार)–842 001
फोन : 09334279957, 09905292801
E-mail : samikshaprakashan@yahoo.com
www : samikshaprakashan.blogspot.com
samikshaprakashan.in

दिल्ली कार्यालय
आर-27, रीता ब्लॉक
विकास मार्ग, शकरपुर, दिल्ली–92
मो.-07970692801

पृष्ठ-सज्जा
सतीश कुमार

मुद्रक
बी०के० ऑफसेट,
शाहदरा, दिल्ली।

मूल्य
400.00 (चार सौ रुपये)

Hindi Upanas Me Lok Sanskriti
Edited by **Poonam Sinha** **Rs. 400.00**

अनुक्रम

सम्पादकीय....		05
• भारतीय संस्कृति लोक संस्कृति में जीवंत है	: डॉ. मृदुला सिन्हा	11
• डॉ. रांगेय राघव के उपन्यासों में लोक संस्कृति	: डॉ. उषा किरण खान	19
• लोक जीवन और उपन्यास	: प्रो. सत्यकाम	24
• उपन्यास और लोक-संस्कृति	: रेवती रमण	43
• घरवास : लोक जीवन से साक्षात्कार	: पूनम सिन्हा	49
• सुर बंजारन : लोक से विलुप्त होते सुरों की धड़कन	: पूनम सिन्हा	57
• हिंदी उपन्यासों में लोकसंस्कृति : रामधारी सिंह दिवाकर के उपन्यासों में लोकसंस्कृति	: हरिनारायण ठाकुर	69
• हिन्दी उपन्यासों में लोक-संस्कृति के विविध आयाम 'देहाती-दुनिया' के संदर्भ में	: प्रो. सुधा बाला	78
• लोकसंस्कृति का ऐतिहासक दस्तावेज अगन हिंडोला	: प्रो. मंगला रानी	88
• लोकजीवन को सहेजने वाली कथाकार : उषा किरण खान	: सुनीता गुप्ता	94
• आंचलिक उपन्यास में लोक-संस्कृति	: डॉ. शैल कुमारी वर्मा	101
• मैला आँचल में लोक संस्कृति की झलक	: डॉ. त्रिविक्रम ना. सिंह	107
• फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों में लोक संस्कृति के विभिन्न चित्र	: डॉ. धीरेन्द्र प्रसाद राय	116
• अमृतलाल नागर के उपन्यासों में लोक संस्कृति	: डॉ. कल्याण कुमार झा	124
• लोक जीवन की यथार्थवादी एवं आदर्शवादी चेतना का सच्चा दस्तावेज 'मैला आंचल'	: स्वर्णिम शिप्रा	133
• आँचलिक उपन्यासों में लोक-संस्कृति	: पल्लवी कुमारी	142
• 'गोदान' में लोक-संस्कृति	: स्मृता	148
• प्रेमचन्द के उपन्यासों में लोक-संस्कृति	: उमेश मल्लिक	153

- 'गोदान' में निहित लोक-संस्कृति के चित्र : रवि कुमार 157
- नागार्जुन के उपन्यासों में लोक-संस्कृति : डॉ. इन्दिरा कुमारी 161
- काशीनाथ सिंह के उपन्यासों में लोक संस्कृति : डॉ. दुर्गानन्द यादव 168
- रामधारी सिंह दिवाकर के उपन्यासों में लोक-संस्कृति : वेदांत चंदन 176
- अनामिका के उपन्यासों में लोक-संस्कृति : सिन्धु कुमारी 182
- हिंदी उपन्यास में लोक-संस्कृति : शिव प्रिया 188
- भगवानदास मोरवाल के उपन्यास 'हलाला' में लोकसंस्कृति : रेशमी कुमारी 191
- रेणु के उपन्यासों में लोक संस्कृति : स्मिता कुमारी 194
- संस्कृति की सामासिकता : डॉ. वीणा शर्मा 198
- आंचलिक उपन्यासों में लोक-संस्कृति : विनीता कुमारी 205

संगोष्ठी प्रतिवेदन 210

■

घरवास : लोक जीवन से साक्षात्कार

पूनम सिन्हा

'जिनको मनुष्य स्वभाव का ज्ञान है, जो अपने विचार मनमोहक भाषा द्वारा प्रकट कर सकते हैं, जो यह जानते हैं कि समाज का रुख किस तरफ है और किस प्रकार की रचना से उसे हानि पहुँच सकती है, वे पश्चिमी पंडितों के तत्त्व-निरुपण का ज्ञान प्राप्त किए बिना भी अच्छे उपन्यास लिख सकते हैं।''[1] (महावीर प्रसाद द्विवेदी, उपन्यास रहस्य, 1922)

मृदुला सिन्हा के उपन्यास 'घरवास' से गुजरते हुए आचार्य द्विवेदी के उपर्युक्त कथन की व्यावहारिकता स्पष्ट हो उठती है। लोक में मृदुला सिन्हा की गहरी पैठ है। गाँव-जवार को उन्होंने दूर से या सूचनाओं के माध्यम से नहीं जाना है। वे स्वयं माटी की उपज हैं। गाँव में ही जन्म लिया एवं गाँव में ही ब्याही गयीं। बागमती नदी की बाढ़ के सुख-दुख से गुजरते ग्रामीण जनों से उनका पुराना रिश्ता है। गाँव की पारम्परिक एवं परिवर्तित बहुलवादी संरचना की इन्हें गहरी समझ है। बिहार में बागमती तट पर बसे गाँवों में आज भी इनका आना-जाना निरंतर लगा रहता है। ग्रामीण सामाजिक-जीवन में आये क्रमिक बदलाव को इन्होंने लक्षित ही नहीं, महसूस भी किया है। गाँव पर आधारित इनके उपन्यासों के केन्द्र में अभिजन से अधिक गरीब किसान, कामगार मजदूर एवं दलित स्त्री-पुरुषों की उपस्थिति है। साहित्य के उत्तर आधुनिक परिदृश्य में अभिजन एवं प्रभुत्वकामी वर्ग के समानान्तर जिस 'सबाल्टर्न' को केन्द्र में प्रतिष्ठापित किया गया वह 'सबाल्टर्न' मृदुला जी के उपन्यासों में बिना किसी मतवाद के सहज स्वाभाविक रूप से जीवनानुभवों के माध्यम से आया है। भारतीय गाँवों के समावेशी समाज का वर्णन दलित प्रसंगों के बिना पूरा हो ही नहीं

सकता।

बिहार में अगड़ी पिछड़ी अथवा सवर्ण अवर्ण को वर्णगत एवं वर्गगत आधार में बाँटने की इस प्रक्रिया लगभग नवें दशक के अन्त में मुख्य रूप से [illegible] हित साधन के लिए प्रधान नहीं। सामाजिक रूप से भी दलितों पिछड़ों में अपने [illegible] के लिए बोध होना शुरू हुआ। [illegible] सुगठन एवं [illegible] होता है। आठवें दशक में रचित एवं नवें दशक के प्रारंभ में प्रकाशित उपन्यास 'घरवास' में भी इस अपनी जड़ें वर्तमान में गहरे जमाए हुए है। प्रेमचन्द के उपन्यास 'रंगभूमि' में दलित बस्ती की कथा एवं फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास 'परती परिकथा' में व्यक्त दलित चेतना दोनों उपन्यासकारों की भविष्य दृष्टि को प्रकट करता है। 'घरवास' उपन्यास के केन्द्र में दलित स्त्री कलिया है। पुस्तक का शीर्षक 'घरवास' की जगह 'गृहप्रवेश' भी हो सकता था, किन्तु उपन्यास का अभिप्रेत 'गृहप्रवेश' शीर्षक से पूरा नहीं होता। 'गृह प्रवेश' अभिजनों के अपने नये घरों में जाने के लिए प्रयुक्त शब्द युग्म हैं। इस उपन्यास में दलित स्त्री कलिया के अपना नया घर बनाने एवं उस घर में अगड़ों की तरह पूजन विधि के साथ प्रवेश करने के 'महास्वप्न' एवं उसके उससे पूरा होने की संघर्ष गाथा है।

इस उपन्यास में बिहार का एक गाँव अपनी पूरी सामाजिक-भौगोलिक संरचना के साथ उपस्थित है। उपन्यास की भूमिका का एक उद्धरण इस उपन्यास के कथ्य को व्यंजित करता है–"यह दुर्बल लेखनी क्या-क्या बखाने-बिलोचना की विलक्षण शक्ति को या उसपर हो रहे दो-तरफा अत्याचारों को ? डाकबाबू की डाकजनी या अँधेरे में जुगनुओं की मानिंद भुकभुकाते रामजीवन और नरेन्द्र को ? या कि 'सफेद गिद्धों' के जाल में फँसे आत्मघात के लिए विवश विजय को? या उस गाँव में गाँधीवाद के अंतिम कड़ी धू-धू कर जले बिलट माझी को? ... सरकारी विकास परियोजनाओं में थमे गँदले जल में पैदा हुए नवधनिक ठेकेदार राघव मिश्र को या व्यास का जल बागमती में मिलाने को उद्धत बिलोचना के जलाये घर की मालमपुरसी करने पंजाब से आये सरदार करतार सिंह को?... या इन सारी विसंगतियों के बीच कलिया की निर्भिकता और विद्रोह को, जो पंडित और पोथी के बगैर भी घरवास की रस्म पूरी करती है।"

'घरवास' की रचना में उपन्यासकार की समावेशी दृष्टि का पता चलता है। कोई उच्च वर्ग या वर्ण का है तो उसे बुरा ही साबित करना है, ऐसे पूर्वाग्रह से उपन्यासकार मुक्त है। रामजीवन सिंह एवं उनका पुत्र उच्च वर्ण के होते हुए भी सताये गये गरीबों एवं दलितों के पक्ष में खड़े होते हैं। अन्याय करने वाले सजातीयों के पक्षधर वे नहीं बनना चाहते हैं। यहाँ 'आधुनिक साहित्य' में संकलित आचार्य नंददुलारे वाजपेयी के निबन्ध की पंक्तियाँ गौरतलब है, ''मैं मानता हूँ कि मार्क्सवादी दर्शन में कोई ऐसी बात नहीं है, जो हमारी नैतिक उन्नति में रुकावट डाले और न हमारे आध्यात्मिक दर्शन में कोई ऐसी बात है, जो नवीन समाजवादी व्यवस्था के लिए घातक है।''

मृदुला जी ने 'घरवास' के पात्रों को सीधे उनके जीवन से उठाया है। मिलावट उतनी ही है जितना यथार्थ जीवन को कला में रूपान्तरित करते हुए सृजनात्मक प्रक्रिया में अनिवार्य होती है। राल्फ फॉक्स का मानना है कि 'उपन्यास की वास्तविक शक्ति महान है, उसका उद्देश्य बड़ा है। उपन्यासकार के पास जीवनदृष्टि होनी चाहिए। जीवन के यथार्थ का गहरा अनुभव होना चाहिए, सर्जनात्मक कल्पना की आधारशक्ति होनी चाहिए, विचार की गहनता होनी चाहिए और जीवन का विवेचन होना चाहिए।'

रामजीवन सिंह देश-काल के प्रति सजग एक संवेदनशील स्कूल-शिक्षक हैं। उन्होंने अपने दिमाग को खुला रखा है, जिसमें नयी ताजा हवा का प्रवेश वर्जित नहीं, स्वीकार्य है। उनका पुत्र नरेन्द्र दिल्ली में पढ़ता है एवं अपने गाँव के दलितों को गर्हित स्थिति से उद्वेलित होता है। जब भी गाँव आता है दलितों के प्रति सहयोगी भूमिका में रहता है। रामजीवन सिंह की माँ हैं जो परम्परा जनित पूर्वग्रह से ग्रस्त हैं। अत: विलोचना की पत्नी जब उनके जामाता के द्वारा पूछे जाने पर अपना नाम 'रामकली' बताती है तो वह भड़क उठती हैं, ''क्या बोली? रामकली! ई मुँह और मसूर की दाल! मुसहरनी कब से रामकली होने लगी ? खबरदार, जो कभी रामकली नाम जुबान पर लाई! चिमटा लगाकर जीभ खींच लूँगी। राम का नाम भी अपवित्र कर दिया! मुसहर की बेटी कहीं राम-राम भजे। ... रामकली का 'राम' बुढ़िया मालकिन की रमरमा चादर पर टँक गया और तब से 'कली' कलिया बन गयी।'' (पृ. 24)

इस उपन्यास में सवर्णों के शोषण और दलितों के प्रतिरोध के समानान्तर गाँव की उन जहालतों का भी वर्णन है, जिससे सवर्ण और दलित यानी गाँव के दोनों वर्गों की स्त्रियों को गुजरना पड़ता है। सुबह होते ही 'दरवाजे पर मर्द लोग गाय, भैंस, बैलों को चारा खिलाने-खिलवाने लगते। महिलाएँ तो उनसे भी पहले उठकर नित्यक्रिया से निवृत हो गृहकाज में जुट जातीं। उजाला होने से पूर्व नित्यक्रिया से निबटना उन महिलाओं की मजबूरी है। सब तरह से अपने को आधुनिक दिखाने का दावा करने वाले गाँववालों में इक्के-दुक्के लोग हैं, जो अपने घर की महिलाओं के लिए शौचालय की व्यवस्था कर पाए हैं।'' (पृ. 34) दलित स्त्रियों की दुर्दशा का तो कोई अंत ही नहीं है। गाँव के लोग सीधे, सरल, सच्चे होते हैं, इस नॉस्टेलजिया को यह उपन्यास तोड़ता है। डाकबाबू एवं उनके ठेकेदार भाई राघव मिश्र गाँव में उत्पात मचाते रहते हैं। गाँव में हर समय तो काम मिलता नहीं है अतः गाँव के युवा दलित पंजाब, आसाम कमाने चले जाते हैं। बिलोचना भी पंजाब में कमाता है। उन युवाओं की अनुपस्थिति में उनके घर की स्त्रियाँ बबुआने की हवस का शिकार बनती हैं। जब समाचारपत्र में खबर आती है कि पंजाब कमाने गये युवकों की हत्या कर दी गयी है तो मुसहर स्त्रियों के बीच हड़कम्प मच जाती है। सहृदय नरेन्द्र उन स्त्रियों को समझा-बुझाकर देर रात घर वापस लौटता है तो डाकबाबू कलिया एवं नरेन्द्र के चरित्र हनन में जी-जान से लग जाते हैं। दुलरिया अपनी मालकिन रामलखी से असल बात बताती है, ''डाकबाबू की कलिया पर चली नाहीं न! वह तो उसे अपने जाल में फँसाना चाहते थे। वह मुसहरनी की जात उनके हाथ न लगी। बस, उसके पीछे पड़ गये हैं। जिस साल बाढ़ नहीं आई थी, उसी साल तो डाकबाबू कलिया के घर में घुसे थे। उस मुँहजली ने हल्ला मचा दिया। सारे मुसहर जाग गये। डाकबाबू उस समय तो भाग निकले, लेकिन गाँव में जब बात फैल गयी तो मुँह नीचा करना पड़ा न! कैसे भूल जाएँ उसको।'' (पृ. 35)

गाँव के दलित युवाओं के पंजाब कमाने से गाँव में खेती के लिए मज़दूरों की कमी हो गयी। गाँव में कुछ घर कुम्हार, कुर्मी एवं धानुक के भी हैं। कुर्मी, धानुक जाति की बहू-बेटियाँ ही प्रमुख रूप से चौका-बरतन का काम करती आई थीं। इस उपन्यास का लेखन काल वर्ण-व्यवस्था का

वह संक्रान्तिकाल है जब शोषित-वंचित अपने हकों के लिए सिर उठाने लगे थे। इसके सशक्तीकरण की सरकारी योजनाएँ बनने लगी थीं। लेकिन इन सरकारी योजनाओं का लाभ आज भी व्यावहारिक स्तर पर गरीबों, मजलूमों तक सही रूप में नहीं पहुँच पाता। गाँव में हर समय काम मिलता भी नहीं। भूखमरी की नौबत आ जाती है। ऐसे में गाँव के भूमिहीन दलित युवा पंजाब या अन्य प्रान्तों में जाकर काम नहीं करें तो क्या करें। अपना घर छोड़ना किसे अच्छा लगता है। बाहर की कमाई लेकर लौटने पर भी तो एक सप्ताह के बाद फिर भूखमरी की नौबत आने लगती है! तमाम तरह के कर्ज (सूद सहित) लौटाते-लौटाते हड्डीतोड़ बाहरी कमाई के सारे पैसे खर्च हो जाते हैं। विलोचना अपनी पत्नी कलिया से कहता है, 'बहुत खटाता है पंजाबी लोग। एक मिनट भी बैठने नहीं देता। इतना तो अपने मालिक के खेत में बैल भी नहीं खटता। रग-रग टूट जाता है।'' (पृ. 69)

दलितों में भी विलोचना और कलिया अलग मिट्टी के बने हैं। विलोचना गाँव में दलितों के प्रति अत्याचार का प्रतिरोध हमेशा करता है। कलिया भूखी रहकर भी किसी बाबू साहेब की अंकशायिनी बनना स्वीकार नहीं करती। जबकि मुसहर औरत के लिए उस गाँव में यह कोई नयी बात नहीं। बुधनी कहती है, 'मुझे तो लगता है, इस औरत ने डाकबाबू से नाहक बैर मोल ले लिया। चुप रह जाती तो क्या होता ? कोई जानता भी नहीं। उसके साथ कोई नयी बात नहीं हुई थी। यह सब तो गाँव में होता ही आया है। किस मुसहरनी के साथ नहीं हुआ! मैं तो कहती हूँ, इस कलिया को तो मुसहरनी की कोख से पैदा ही नहीं होना चाहिए था।'' (पृ. 52)

यही कलिया जब बबुआने में घरवास की रस्म देखती है तो उसकी इच्छा होती है कि उसका भी एक घर हो और वह भी नयी पीली साड़ी पहन नयी धोती में सजे विलोचना के साथ हाथ में दही, फल लेकर अपने घर में प्रवेश करे। 'विलोचना के अनुसार उसकी पत्नी' के खयालात मालिक के घर की बहू-बेटियों जैसे थे। वह सोचता रहा, क्या पता इसकी चाह कभी पूरी होगी कि नहीं। अपनी जान पर खेलकर वह घर बनवाने की कोशिश कर रहा था; पर उसे अपनी औकात का भान था।'' (पृ.

124-125)

मुसहर बस्ती में रात में आग लगा दी गयी। इन गरीबों की जो टूटी झोपड़ीं-मड़ैया थी वह भी राख! अपनी झोंपड़ी के साथ स्वतंत्रता सेनानी बिलट पासवान, जिसकी इज्जत पूरा गाँव करता था, भी स्वाहा हो गया। नकली स्वतंत्रता सेनानियों को पेंशन मिल रही थी। रामजीवन सिंह बिलट पासवान को पेंशन के लिए जो तोड़ दौड़-धूप करते रहे लेकिन बिलट पासवान के जीते जो पेंशन की राशि नहीं मिली। बिलट पासवान की मृत्यु के बाद रामजीवन सिंह को मालूम हुआ कि उनकी मेहनत रंग लायी और साल भर से बिलट पासवान के नाम से पेंशन की राशि आ रही थी, जिसे डाकबाबू हड़प जाते थे। मास्टर रामजीवन सिंह को हुड़कन होती है, "सरकार को भी देखिए जो स्वतंत्रता सेनानी था, वह तो स्वतंत्र भारत में तड़प-तड़प कर मरा, जिसे सत्ता सौंपी गयी, उसने शासन में भ्रष्ट आचरण का ऐसा जाल फैलाया कि उसकी लपट इस गाँव तक पहुँचकर एक स्वतंत्रता सेनानी को जिन्दा जला गयी। जो लोग अंग्रेजों के डर से घर में माँ और पत्नी के आँचल में घुसे रहे उन्हें स्वतंत्रता सेनानी पेंशन कब की मिल गयी।" (पृ. 192) तत्कालीन महत्त्वपूर्ण राजनीतिक सामाजिक परिदृश्य कथा-प्रवाह में चलते रहते हैं। बंगलादेशियों की घुसपैठ, खालिस्तान समस्या, जे.पी. आन्दोलन ये सभी तत्कालीन घटनाएँ 'घरवास-प्रसंग' की मुख्य कथा के साथ सूत्रबद्ध हैं।

'घूरे का भाग भी एक दिन फिरता है।' मुसहरों के घर भी, एक-एक कोठरी का ही सही, एक दिन बनते हैं। यह बात दीगर है कि राघव ठेकेदार ने एक नंबर ईंट अपने घर में लगा दिये और तीन नंबर ईंटों से मुसहर टोली के घर बनवाये। घरवास करने की अपनी चिरसंचित लालसा के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों का अनुमान विलोचना और कलिया-दोनों पति-पत्नी को है। विलोचना से कहती है कलिया, 'बुढ़िया मालकिन को सहा न जाएगा। घरवास की बात सुनेंगी तो मुझे गाली-गलौज करेंगी। कहेगी-'ई मुँह मसूर की दाल। मुसहरनी कहीं घरवास करती हैं!" (पृ. 125) विलोचना की हार्दिक इच्छा है कि वह अपनी पत्नी की चिरसंचित घरवास की लालसा को पूरी करे, किन्तु यह कितना कठिन है, इसे वह भी समझता है, 'रुपये खर्च होंगे। ऊपर से पंडितजी तैयार भी नहीं होंगे

हमारे घर पूजा कराने के लिए। वैसे भी घर देखकर सब जल रहे हैं। उनको तो हमारा पेड़ के नीचे रहना ही अच्छा लगता है। हमलोगों ने घरवास की पूजा करवाई कि सब एक होकर किसी न किसी बहाने हमको फिर आफत में फँसा देंगे। सारी बातें समझते हुए भी घरवास की पूजा करा देने के लिए वह पंडित जी के पास जाता है। पंडित जी आगबबूला हो उठते हैं, भाग जा यहाँ से! स्साला! हरामी कहीं का अब मैं मुसहर के घर पूजा करवाऊँगा। पंजाब जाकर दिमाग खराब हो गया तुम्हारा... अब मुसहर भी घरवास करेंगे। (पृ. 238)

उपन्यास का चरमोत्कर्ष वहाँ है, जहाँ कलिया ने बच्चों से मुसहर टोली के घर-घर संदेश भेजवा दिया कि 'पंडित जी नहीं आएँगे। आप लोग घरवास कर लीजिए।' (पृ. 240) प्रेमचंद की 'सद्गति' कहानी का दुखी चमार बेटी की बिदागरी की साइत करवाने के लिए पंडित जी के दरवाजे पर भूसा-प्यासा भरदिन उनकी लकड़ी की गाँठ चीरते-चीरते स्वयं ढेर हो जाता है। दुखी चमार से लेकर कलिया तक की लंबी यात्रा में कितना परिवर्तन आ चुका है, वह कलिया के निर्णय से स्पष्ट है। 'नए घर के एक कोने में मन मारे बैठे विलोचना को झकझोर गयी', 'लो यह धोती पहनो। हमें पंडित-वंडित की कोई जरूरत नहीं। अपने आप घरवास करेंगे।'' ''न पोथी, न पतरा:, न पंडित, न पुराण और न भोज-भात। फल लिये विलोचना आगे-आगे घर में प्रवेश करने लगा।'' (पृ. 240) पीछे-पीछे कलिया एवं बच्चों ने प्रवेश किया।

इस घरवास के द्वारा उपन्यासकार ने दलितों की दमित इच्छा को यथार्थ स्वरूप प्रदान किया है। मुसहर बस्ती में होने वाले घरवास की घटना से पाठक भी आत्मतोष प्राप्त करता है। प्रेमचंद ने कहा है, 'सफल उपन्यासकार का सबसे बड़ा लक्षण है कि वह अपने पाठकों के हृदय में उन्हीं भावों को जागरित कर दे, जो उसके पाठकों में हैं। पाठक भूल जाय कि वह कोई उपन्यास पढ़ रहा है—उसके और पात्रों के बीच आत्मीयता का भाव उत्पन्न हो जाय। उपन्यासकार ने इस दबे-कुचले, किन्तु अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होते दलितों के साथ पाठकों को संवेदना के स्तर पर जोड़ा है।

इस प्रकार इस उपन्यास में दलितों के द्वारा सवर्णों के प्रति खुले

विद्रोह का यथार्थ वर्णन है। उनकी सांगठनिक क्षमता के अभाव एवं कारणों का भी वर्णन है। उपन्यास में गाँव की लोक-संस्कृति एवं पर्व-त्योहारों के भी रोचक आख्यान हैं। ये आख्यान मुख्य कथा के पोषक हैं, केन्द्रीय तत्त्व नहीं। पुरुष पात्रों के समानान्तर जीवंत एवं जुझारू स्त्री पात्रों की उपस्थिति भी महत्त्वपूर्ण है। यह पूरा उपन्यास उसी वस्तुजगत का प्रतिबिम्ब है, जिससे उपन्यासकार का गहरा तादात्म्य रहा है। कथा-साहित्य के मर्मज्ञ आलोचक डॉ. गोपाल राय कहते हैं, '...जब हम उपन्यास के कथा-संसार की संरचना पर विचार करने बैठते हैं, तो हमारी पहली माँग यह होती है कि वह हमारे इस 'यथार्थ-बोध' या 'इन्द्रीय बोध' से कितना शासित है। हम अपेक्षा करते हैं कि कथा-संसार का परिवेश हमारे वास्तविक संसार जैसा ही हो, वैसा ही भूगोल, प्रांतों, नदियों, पहाड़ों, शहरों और गाँवों के नाम वैसे ही हों, जैसे हमारे आज के नक्शे में हैं, स्थानों और नगरों के नाम ही नहीं, उनके विवरण भी।' (उपन्यास की संरचना, पृ. 139) यहाँ एक बात ध्यातव्य है कि यथार्थ-वर्णन में अलगावपूर्ण तटस्थता भी अनिवार्य है।

'घरवास' में वस्तु के अनुरूप रूपगत सहजता भी है। ग्राम प्रचलित शब्दों, लोकोक्तियों एवं मुहावरों के प्रयोग ने उपन्यास के रूप को सहज, विश्वसनीय एवं रोचक बनाया है। कुछ बानगी यहाँ प्रस्तुत हैं–'बिडोआ' (भँवर), 'मरद चिन्ह', 'घरमुँहे बैल', 'धोबन की बेटी को न नैहर सुख, न सासुर सुख', 'चार भैंस का चार चभक्का' आदि।

–अध्यक्ष, विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग,
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

■